SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंधों की मनोवैज्ञानिकताः 'करुणा' भाव के विशेष सन्दर्भ में

दिनेश श्रीवास, हिंदी विभाग
शा.इ.वि. पी.जी.महाविद्यालय,कोरबा, छत्तीसगढ़, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
दिनेश श्रीवास

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 15/06/2023
Revised on : -----
Accepted on : 22/06/2023
Plagiarism : 03% on 15/06/2023

शोध सार

हिंदी निबंध साहित्य के विकास में भारतेंदु हरिश्चंद्र का योगदान अविस्मरणीय है। भारतेन्दु मण्डल के साहित्यकारों ने निबंध साहित्य को पूर्ण विकसित करने का प्रयास किया, लेकिन निबंधों में मनोवैज्ञानिकता का सन्निवेश आचार्य शुक्ल के द्वारा ही किया गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ निबंधकार के रूप में जाने जाते हैं। उनके निबंधों में विचारात्मक एवं भावात्मक शैली स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। उनके निबंधों का एक–एक वाक्य अर्थ की दृष्टि से अपूर्व होता है। हिंदी निबंध के क्षेत्र में एक मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री और साहित्यकार तीनों भूमिकाओं का अकेले शुक्ल जी ने ही निर्वाह किया है। निबंधों के माध्यम से आचार्य शुक्ल का सम्पूर्ण व्यक्तित्व पाठक के सामने आ जाता है। निबंध साहित्य के माध्यम से आचार्य शुक्ल ने लेखन का मानदण्ड स्थापित किया है। शुक्ल जी के चिंतामणि में संकलित मनोविकार संबंधी निबंध अपनी वैचारिकी के कारण न केवल हिन्दी साहित्य अपितु अन्यान्य भारतीय साहित्य में भी स्मरणीय रहेंगे। विद्वानों ने आचार्य शुक्ल के चिंतामणि में संकलित निबंधों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है–भाव सबंधी, निबंध आलोचनात्मक निबंध,आलोचनात्मक प्रबंध आदि। शुक्ल जी के निबंधों को शास्त्रीय वर्गीकरण से अलग हट कर देखा जाए तो भी उनके निबंध अपना मापदण्ड स्वयं स्थापित करते हैं। शुक्ल के निबंध मनोविज्ञान की दृष्टि से पूर्ण होने के बाद भी पाश्चात्य जगत के कोरे मनोवविश्लेषणवाद के मानसिक व्यायाम नहीं है। ये भारतीय, सांस्कृतिक और साहित्यिक बोध सम्पृक्त हैं।

मुख्य शब्द

मनोवविश्लेषण, सम्पृक्त, लिबीडो, ग्रन्थि, हीनभावना, सांस्कृतिक बोध.

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ निबंधकार के रूप में जाने जाते हैं। उनके निबंधों में विचारात्मक एवं भावात्मक शैली स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। उसके निबंधों का एक–एक वाक्य अर्थ की दृष्टि से अपूर्व होता है। हिंदी निबंध के क्षेत्र में एक मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री और साहित्यकार तीनों भूमिकाओं का अकेले शुक्ल जी ने ही निर्वाह किया है। निबंधों के माध्यम से आचार्य शुक्ल का सम्पूर्ण व्यक्तित्व पाठक के सामने आ जाता है। निबंध साहित्य के माध्यम से आचार्य शुक्ल ने लेखन में मानदण्ड स्थापित किया है। शुक्ल जी के चिंतामणि में संकलित मनोविकार संबंधी निबंध अपनी वैचारिकी के कारण न केवल हिन्दी साहित्य अपितु अन्यान्य भारतीय साहित्य में भी स्मरणीय रहेंगे। विद्वानों ने आचार्य शुक्ल के चिंतामणि में संकलित निबंधों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है–

क) **भाव सबंधी निबंध**– 'करुणा', 'श्रद्धा–भक्ति', 'उत्साह', 'लज्जा और ग्लानि', 'लोभ और प्रीति', 'ईर्ष्या', 'भय तथा क्रोध', 'घृणा', शीर्षक निबंध इसी कोटि में रखे जाऐंगे।

ख) **आलोचनात्मक निबंध**– 'कविता क्या है', 'काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था', 'साधारणीकरण एंव व्यक्ति वैचित्र्यवाद' तथा 'रसात्मक बोध के विविध रूप' इस श्रेणी के निबंध है। 'तुलसी का भक्ति– मार्ग' एवं 'भारतेंदु हरिश्चन्द्र' भी इसी कोटि के निबंध हैं।

ग) **आलोचनात्मक प्रबंध**– 'काव्य में रहस्यवाद', 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' इस कोटि के निबंध हैं। यदि शुक्ल जी के निबंधों को शास्त्रीय वर्गीकरण से अलग हट कर देखा जाए तो भी उनके निबंध अपना मापदण्ड स्वयं स्थापित करते हैं और जैसा कि डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है:

''उनकी विचार पद्धति बहुत कुछ सुनियोजित है। आरंभ में वे प्रतिपाद्य विषय को नपी–तुली शब्दावली में प्रस्तुत करते हैं। कोशिश करते है कि विवेच्य विषय की सभी विशेषताओं को सूत्रबद्ध करके उसे परिभाषित कर दिया जाए। 'श्रद्धा–भक्ति', 'उत्साह', 'लज्जा', 'प्रेम', 'घृणा', 'भय', 'ईर्ष्या' एवं 'करुणा' आदि मनोभावों को उन्होंने परिभाषित भी किया है। उसके बाद विषय को स्पष्ट करने के लिए वे उससे संबद्ध विचार सूत्रों को विस्तार देने या फैलाने के क्रम में वे मनोभाव विशेष की वर्गगत पहचान, उसके समकक्ष रखे जा सकने वाले मनोभावों से उसकी समता–विषमता, उसकी प्रेष्यता–अप्रेष्यता, समाज पर उसके शुभ–अशुभ प्रभावों आदि की चर्चा करते हैं। अपने निबंधों के अन्त में वे प्रायः अपने पूरे प्रतिपाद्य को साफ–सुथरे ढंग से संक्षेप में प्रस्तुत कर देते हैं।''

यह सर्वविदित है कि शुक्ल जी के निबंध विचारात्मक शैली समास–प्रधान है। विचारों के गूढ़ गुंफन इसी शैली में संभव है। भावात्मक शैली का प्रयोग उन्होंने प्रायः वहाँ किया है, जहाँ उनका मन विधाता द्वारा रचित उस विश्व काव्य की रमणीयता देखकर मुग्ध हो गया है या जहाँ अपने काव्य नायक राम के शील का उत्कर्ष देखकर वे स्वयं अभिभूत हो गए हैं। वर्णनात्मक शैली का प्रयोग शुक्ल जी ने बहुत कम किया है। विचारात्मक शैली शुक्ल जी की पहचान है।

निबंध शब्द को परिभाषित करते हुए डॉ. जानसन ने लिखा है– ''निबंध मस्तिष्क की सहसा उठी हुई अनियंत्रित, विश्रृंखलित, उन्मुक्त कल्पना शक्ति का परिणाम है।'' यही कारण है कि निबंध के जन्मदाता मानटेन से लेकर वर्तमान तक ललित निबंधकार यह स्वीकार करते हैं कि निबंधों में मर्मस्पर्शिता व मौलिक व्यक्तित्व की छाप होनी चाहिए। सुप्रसिद्ध आलोचक हड़सन ने तो व्यक्तिगत निबंध को ही यथार्थ निबंध माना है। इस दृष्टि से आचार्य शुक्ल के निबंध यथार्थ निबंध हैं। निबंध चाहे मनोवैज्ञानिक हो या विचारात्मक या विषयगत। सभी में शुक्ल का व्यक्तित्व उभरकर सामने आया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी निबंध को प्रौढ़ता के उच्चतम शिखर तक पहुँचा दिया है।

निबंधों में मनोवैज्ञानिकता

मनोवैज्ञानिक निबंधकार के रूप में भी शुक्ल जी प्रसिद्ध हैं। उन्होंने हिन्दी निबंधों को अत्यन्त स्वस्थ्य और प्राणवान रूप दिया। आचार्य जी के मनोवैज्ञानिक निबंध गंभीर चिंतन के फलस्वरूप मन–मस्तिष्क का दर्पण बनकर हमारे सामने आते हैं। एक साहित्यकार होते हुए भी उन्होंने मनोवैज्ञानिकों की तरह मनोभावों को स्पष्ट किया है। डॉ. जयनाथ नलिन ने आचार्य शुक्ल के मनोवैज्ञानिक निबंधों के विषय में कहा है:

"शुक्ल जी के मनोभाव एवं सिद्धांत निर्धारण संबंधी निबंधों की सबसे बड़ी विशेषता है– विज्ञान के समान यथार्थ परिभाषा, गणित के अंकों के समान सही मूल्य, मर्यादा और छाया प्रकाश के समान अन्तर की स्पष्टता।"

यह कथन सिद्ध करता है कि शुक्ल जी के निबंधों में स्पष्टता है। वे नपी–तुली शब्दावली में सम्यक परिभाषा प्रस्तुत करते हैं। आचार्य शुक्ल ने मनोविकार सम्बन्धी निबंधों को मनोविज्ञान की आधुनिक खोजों से जोड़कर लिखने का सफल प्रयास किया। आपके मनोविकार सम्बन्धी निबंध कोरे मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित न होकर साहित्यिक एवं सांस्कृतिक बोध से भी संपन्न है।

मनोवैज्ञानिक निबंध

हृदय और बुद्धि के साथ रोचक शैली का भी समन्वय आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में निबंध साहित्य का विश्लेषण करते हुए लिखा है:

"आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबंध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व या व्यक्तिगत विशेषता हो। व्यक्तिगत विशेषता का यह मतलब नहीं कि उसके प्रदर्शन के लिए विचारों की श्रृंखला रखी ही न जाए या जानबूझ कर जगह–जगह तोड़ दी जाए। एक ही बात को लेकर किसी का मन किसी संबंध– सूत्र पर दौड़ता है, किसी का किसी पर। व्यक्तिगत विशेषता का मूल आधार यही है।"

इसी बात को सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. सत्येन्द्र ने स्पष्ट करते हुए लिखा:

"निबंध के सम्बंध में यह बात आज निश्चित–सी मान ली गई है कि वह आत्माभिव्यक्ति का ही साधन है। अतः चाहे कोई विषय हो या विषय की कोई शाखा हो, उसमें व्यक्तिपरकता अवश्य होनी चाहिए।"

अपनी पुस्तक चिन्तामणि के आरम्भ में आचार्य शुक्ल ने लिखा है:

"इस पुस्तक में मेरी अन्तर्यात्रा के पड़ने वाले कुछ प्रदेश है। यात्रा के लिए निकलती हुई बुद्धि जहाँ कहीं मार्मिक या भावाकर्षक स्थलों में पहुँची है, वहाँ हृदय थोड़ा बहुत रमता और अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ–कुछ सहता गया है। इस प्रकार यात्रा के श्रम का परिहार होता है। बुद्धि पथ पर हृदय भी अपने लिए कुछ–न–कुछ पाता रहा है। इस बात का निर्णय विज्ञ पाठकों पर छोड़ता हूँ कि निबंध विषयप्रधान है कि कुछ–न–कुछ व्यक्तिप्रधान।"

परन्तु आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध वास्तव में कहीं विषय प्रधान है तो कही व्यक्ति प्रधान। उनके निबंधों में हृदय तथा बुद्धि तत्व का सुमधुर समावेश है तब ही तो रोचकता लाने के लिए कहीं– कहीं लोक प्रचलित कथाओं को गूंथा है तो कहीं अपने जीवन से घटनाओं, दृश्यों आदि का प्रसंग देकर विषय को स्पष्ट किया है, साथ ही शैली में अद्‌भुत वक्रता, तीक्ष्णता, कथन की विचित्रता से नीरसता को तो दूर किया ही है, जरूरत पड़ने पर चोट करने से भी नहीं चूके हैं। उनके निबंधों में प्राप्त व्यंग्य – आक्षेप, हास– परिहास तथा वक्रता की त्रिवेणी में पाठक सहज भाव से अवगाहन करता चलता है। विचारों की गहराई के बीच व्यक्तिगत बातों और व्यंग्य विनोद से व्याख्या भी रूचिकर हो गई है।

निबंधों में मनोविज्ञान के साथ लोकमंगल एवं लोकसंग्रह का संयोग

शुक्ल जी के निबंधों में तथ्यों का प्रस्तुतीकरण जीवन को आधार बनाकर किया गया है। व्यक्ति के स्थान पर समष्टि को ध्यान में रखकर उनमें निष्कर्ष एवं उनके सिद्धांत प्रतिपादित हुए हैं। इन सभी निबंधों का लक्ष्य आचार से संबंधित है। सभी निबंध लोकमंगल और लोकसंग्रह की भावना से युक्त हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है और उसके सुख–दुख का बहुत–सा अंश दूसरों के कामों और उनकी अवस्था पर निर्भर करता है। दूसरों के दुख से दुखी होना और सुख से सुखी होना उसके लिए स्वाभाविक है। जहाँ यह नियम है वहाँ यह भी देखा गया है कि हम दूसरों के सुख से सुखी होने की अपेक्षा उनके दुख से दुखी अधिक और शीघ्र होते हैं। यह भी स्वाभाविक ही है कि परिचितों के दुख पर हम अपरिचितों के दुख से अधिक दुखी होते हैं। इस प्रकार की व्याख्या में आचार्य शुक्ल ने मनोविज्ञान के नियमों के साथ लोकमंगल एवं लोकसंग्रह की वृत्ति को भी समाहित किया है।

''करुणा'' भाव के सन्दर्भ में मनोवैज्ञानिकता

जीवन में दया तथा करुणा के भाव मानव को पूर्णता प्रदान करते हैं। करुणा का अर्थ व्यक्तियों या प्राणियों के प्रति उत्पन्न होने वाले उस भावना से है जो उनकी उस कमजोर स्थिति को समझने तथा उसके प्रति समानुभूति की चिंता रखने से उत्पन्न होती हैं। यह भावना व्यक्ति को प्रोत्साहित करती है कि वह पीड़ित के दुःख दूर करने में सहायता करे।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित मनोविकार सम्बंधी निबंधों में करुणा का अत्यधिक महत्त्व है। यह निबंध आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सर्वश्रेष्ठ निबंधों में से एक है। दूसरों के दुख के परिज्ञान से जो भाव उपजता है वह करूणा–दया आदि नामों से पुकारा जाता है। करुणा दुख का ही एक भेद है। करुणा का उल्टा क्रोध है क्योंकि उसके उत्पन्न होने पर हम दूसरों की हानि की चेष्टा करते हैं। करूणा उत्पन्न होने पर उसकी भलाई का उद्योग करते हैं। दूसरी तरफ लोभ आनंद की श्रेणी में है पर लोभी अपनी प्रिय वस्तु को हानि या दुख नहीं पहुँचाता है, उल्टे रक्षा करता है। आचार्य शुक्ल ने इस भाव के विषय में निम्नलिखित बातें कही हैः

1. **परोपकार की मूल भावना करुणाः** माना जाता है कि सम्पूर्ण विश्व में परोपकार की भावना का मूल तत्व करुणा ही हैं। दूसरों के दुख के परिज्ञान से जो दुख होता है वह करुणा, दया आदि नामों से पुकारा जाता है। करुणा दुख का ही एक भेद है। करूणा का उल्टा क्रोध है क्योंकि उसके उत्पन्न होने पर हम दूसरों की हानि की चेष्टा करते हैं। करूणा उत्पन्न होने पर उसकी भलाई का उद्योग करते हैं। आचार्य शुक्ल ने कहा है–. ष्यदि किसी के झूठ बोलने से कोई निरपराध और निस्सहाय व्यक्ति अनुचित दंड से बच जाए तो ऐसा झूठ बोलना बुरा नहीं बतलाया गया है क्योंकि नियम, शील या सद्वृत्ति का साधक है, समकक्ष नहीं।[३] मनुष्य के अंतःकरण में सात्विकता की ज्योति जगाने वाली यही करूणा है। इसी से जैन और बौद्धधर्म में इसको बड़ी प्रधानता दी गई है और गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है– पर उपकार न भलाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।
2. **दया व करुणा में अंतरः** दया एक विशिष्ट भाव है जो किसी विशिष्ट व्यक्ति या प्राणी के प्रति उत्पन्न होती है, जैसे विशेष परिस्थिति में सड़क पर किसी दुर्घटनाग्रस्त जीव को देखकर दया का भाव आना। इसके विपरीत करुणा विशिष्ट के प्रति ही नहीं सामान्य के प्रति भी हो सकती हैं। बुद्ध ने करुणा को नैतिकता का मूल आधार माना है और वह करुणा सामान्य के प्रति ही है। दया में यह निहित होता है कि दया का पात्र खुद उबरने में समर्थ नहीं है जबकि दया करने वाला समर्थ हो सकता भी सकता है और नहीं भी। उदाहरण क, ख से अधिक ताकतवर है और उसे मार रहा है और ख उससे दया की भीख मांगे तो क समर्थ है। दूसरी ओर यदि क की दुर्घटना किसी बस से हो जाती है और चोट ऐसी है कि कोई भी डॉक्टर उसे नहीं बचा सकता तो ऐसे समय डॉक्टर या कोई भी व्यक्ति दया का भाव रखेगा तो भी असमर्थ ही होगा, इसके विपरीत करुणा के लिए यह जरुरी नहीं है कि पीड़ित व्यक्ति अपनी स्थिति से बाहर निकलने में अक्षम हो। दया एक तात्कालिक मानसिक अवस्था है इसके विपरीत, करुणा तुलनात्मक रूप से स्थायी भाव है।
3. **करुणा और क्रोधः** अपने परिणाम की परम्परा में करुणा का उल्टा क्रोध है। क्रोध में मनुष्य दूसरे का अनिष्ट करता है और करुणा में वह दूसरे की भलाई करता है तथापि दोनों के परिणाम भिन्न–भिन्न होते हैं। दुःख से पैदा होने वाले मनोभाव चाहे दूसरे की हानि की प्रेरणा दे सकते हैं, पर सुख से उत्पन्न मनोभावों में ऐसा नहीं होता। हम देखते हैं कि मनुष्य दुःख की अवस्था में तो जातिगत भावनाओं से ऊँचा रहकर दुःखी होता है, पर जब सुख का प्रसंग आता है तो यह केवल मात्र अपने सम्बन्धी या मित्र के सुख में ही सुखी होता है। दूसरे से प्राप्त होने वाले सुख का कोई दूसरा नाम नहीं पाया जाता, पर दूसरों के दुःख के परिज्ञान से जो दुःख होता है वह करुणा, दया आदि नामों से पुकारा जाता है। वैसे तो करुणा सब पर होती है, पर अपनों के प्रति उसकी भावना अधिक तीव्र पाई जाती है। किसी सुन्दरी, किसी महात्मा या भाई–बन्धु को दुःखी देखकर हम अधिक दुःखी हो जाते हैं। शायद यह तीव्रता जीवन निर्वाह की सुगमता और कार्यविधि की पूर्णता के लिए की जाती है।

4. **करुणा सात्विकता का प्रसार करती है:** मनुष्य की प्रगति में शील और सात्विक भावों का आदि संस्थापक यही मनोविकार है। मनुष्य की सज्जनता और दुर्जनता उसके संसर्ग से ही जानी जाती है। संसार में प्रत्येक प्राणी के जीवन का उद्देश्य दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति है। अब जिन कर्मों से सुख की प्राप्ति हो उन कर्मों को सात्विक कर्म कहते हैं। अपने आचरण द्वारा हम दूसरे के सम्भाव्य दुःख का ध्यान या अनुमान, जिसके द्वारा हम ऐसी बातों से बचते हैं जिनसे अकारण दूसरे को दुःख पहुँचे, शील या साधारण सद्वृत्ति के अन्तर्गत समझा जाता है। पर कई बातें ऐसी होती हैं, जो शील क्षेत्र से निकलकर नियम की दुनियाँ में चली जाती हैं, जैसे असत्य भाषण नहीं करना चाहिए, पर मनोरंजन या किसी दूसरे की रक्षा के लिए किया गया असत्य भाषण भी बुरा नहीं होता। इसे चाहे नियम में बुरा कहा जाये, पर शील से यह सब ग्राह्य है। इसका कारण हृदय की पवित्रता तथा परोपकार की प्रवृत्ति है। यही करुणा शील और सात्विकता प्रदान करती है। किसी व्यक्ति पर यदि हमारे मन में श्रद्धा है तो उसका मूल भी सात्विकता ही है। अतः करुणा और सात्विकता का सम्बन्ध इस बात से भी प्रमाणित होता है कि किसी पुरुष को दूसरे पर करुणा करते देख तीसरे को करुणा करने वाले पर श्रद्धा हो जाती है। मनुष्य का आचरण भी मनोवेगों की प्रवृत्ति का परिणाम है। अतः इस क्षेत्र में भाव उमड़ पड़ते हैं और बुद्धि रह जाती है।
5. **करुणा और शोकः** प्रिय के वियोग से जो दुःख होता है, वह करुणा कहलाता है, क्योंकि उसमें भी दया व करुणा का अंश मिला होता है। वह दूर रहने वाले व्यक्ति के सुख के अभाव की चिन्ता में प्रकट होता है। प्रिय के वियोग को शोक कहते हैं, पर फिर भी उसमें करुणा का समावेश आवश्यक होता है शोक और करुणा विह्वल होकर मानव अपने सम्बन्धियों से किये गये अन्याय के लिए पछताता भी है।
6. **करुणा में सामाजिकता:** पश्चिम के समाजशास्त्री चाहे आत्मरक्षा की भावना में करुणा को महत्व देते हैं, पर वास्तव में यह सत्य नहीं, क्योंकि मनुष्य किसी के प्रति आज करुणा करके आने वाले युग में उससे करुणा की कामना नहीं करता। यदि ऐसा होता तो वह निर्बल पर करुणा न करके सदा बलवानों पर करुणा करता, पर ऐसा होता तो नहीं है। कभी–कभी मानव दूसरों के कष्ट देखकर दुःखी तो होता है, पर करुणा नहीं करता, तो वह सहानुभूति कहलाती है। आज तो सहानुभूति भी केवल आडम्बर मात्र हो गई है, अन्य भावों के समान करुणा की प्रतिभावना करुणा नहीं होती। सीमित स्थान विशेष के ज्ञान की परिधि को लाँघकर स्मृति, अनुमान और ज्ञान से मानव देश और काल का विस्तार करता है किसी को मार खाते देखकर हमे दुःख होता है, पर उसके अपराधों की लम्बी कहानी सुनकर हमारा वह भाव समाप्त हो जाता है। मन की रागात्मक क्रिया इन मनोवेगों को विस्तृत और सीमित रखती है। इन मनोवृत्तियों का दमन नहीं किया जा सकता, जबकि संसार की सभी वस्तुओं के मूल में ये मनोवृत्तियाँ ही कार्य करती है। कवि इसी से आत्म–विस्तार कर प्रकृति से सम्बन्ध स्थापित करता है, पर यदि इनका सही उपयोग न किया जाए, तो ये मनोभाव कुण्ठित हो जाते हैं।

निष्कर्ष

शुक्ल जी के मनोविकार सम्बंधी निबन्ध गहरी चितंन के परिणाम हैं। इनमें भावों का मनोवैज्ञानिक रूप स्पष्ट किया गया है तथा मानव जीवन में उनकी आवश्यकता, मूल्य और महत्व का निर्धारण हुआ है। भावों के अनुरूप ही मनुष्य का आचरण ढलता है– इस दृष्टि से शुक्ल जी ने उनकी सामाजिक अर्थवत्ता का मनोयोगपूर्वक अनुसंधान किया। उन्होंने मनोविकारों के निषेध का उपदेश देनेवालों पर जबर्दस्त आक्रमण किया और मनोवेगों के परिष्कार पर जोर दिया। ये निबंध व्यावहारिक दृष्टि से पाठकों को अपने आपको और दूसरों को सही ढंग से समझने में मदद देते हैं तथा उन्हें सामाजिक दायित्व और मर्यादा का बोध कराते हैं। समाज का संगठन और उन्नयन करनेवाले आदर्शों में आस्था इन रचनाओं का मूल स्वर है। भावों को जीवन की परिचित स्थितियों से संबद्ध करके साहित्य की दृष्टि से भी उनका प्रामाणिक निरूपण हुआ है।

संदर्भ सूची

1. कपूर मस्तराम, *अस्तित्ववाद से गाँधीवाद तक*, वीणा प्रकाशन, नई दिल्ली 2000।

2. कपूर श्याम चन्द्र, *हिन्दी साहित्य का इतिहास,* हिन्दी ग्रंथ अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1999।
3. चतुर्वेदी रामस्वरूप, *हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास,* लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008।
4. गुप्त गणपति चन्द्र, *हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास,* लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008।
5. गुप्त लालचंद, अस्तित्ववाद साहित्यिक और सांस्कृतिक, भूमिका अध्ययन केन्द्र प्रकाशन, लखनउ, 1975।
6. चन्द्र सुरेश, *साहित्यायन,* अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2011।
7. शंभूनाथ, *हिंदी परंपराः नवजागरण और संस्कृति,* आनंद प्रकाशन, कोलकाता 2003।
8. राजपाल हुकूमचंद, हिंदी साहित्य का इतिहास, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1997।
9. नगेन्द्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* मयूरबैक प्रकाशन, दिल्ली, 2014।
10. किशोर रजा, *स्त्री परंपरा और आधुनिकता,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

पत्रिका–

1. नया ज्ञानोदय अंक–35, जुलाई 2007
2. उत्तर प्रदेश पत्रिका विशेषांक सितंबर 2003

****